अध्याय तीन

दलित स्त्री कहानियों में अस्मिता बोध एवं जीवन संघर्ष – चुनी हुई कहानियों के सन्दर्भ में

भारतीय समाज के सबसे निचले पायदान पर खड़ी दलित महिला ने हमेशा समाज की वर्जनाओं और निषेधों को लांघकर ब्राह्मणवादी व्यवस्था के मुख्य स्तंभों पितृसत्ता, धर्म और जातिवाद को कड़ी टक्कर दी है। चाहे वह चिंतन का क्षेत्र हो या संघर्ष का, दोनों ही स्तरों पर इसने अपने अस्तित्व और अस्मिता की लड़ाई पुराने समय से लेकर आज तक जारी रखी है। प्रचलित सामाजिक व्यवस्था पुरुष प्रधान व्यवस्था है। इस व्यवस्था में दलित महिलाओं को सदैव दोयम दर्जा मिली है। दलित स्त्रियों को सामाजिक और आर्थिक रूप से उपेक्षित, और गुलामों जैसा व्यवहार किया गया है। धर्म और संस्कृति के नाम पर उनके बंधन लादे गए थे। उसे शिक्षा से वंचित रखा गया था। सती प्रथा, बाल विवाह, विधवा का पुनर्विवाह न होना आदि प्रथा-परंपराओं ने स्त्री की मानसिक, शारीरिक षोषण किया है। दलित महिलाओं को वर्चस्वशाली संस्कृति ने हाशिए पर धकेल दिया है। दलित और स्त्री आंदोलनों ने उनके अस्तित्व और पहचान के सवाल उठाए, लेकिन दलित स्त्रियों के सवालों को नज़रअंदाज़ कर दिया। दलित स्त्रियों ने अपने संघर्ष का इतिहास लिखने के लिए साहित्य लेखन का सहारा लिया। सदियों से जमीनी संघर्ष में अहम भूमिका निभाई है, लेकिन उनकी आवाज़ दबा दी गई। स्त्री एन.जी.ओ भी दलित स्त्रियों के मुद्दों को उठाते हैं, लेकिन इन संगठनों का दृष्टिकोण व्यक्तिगत है। विकास के नाम पर दलित महिलाओं को जल, जंगल, ज़मीन से वंचित किया जा रहा है। दलित आदिवासी लड़कियों को जबरन वेश्यावृत्ति और घरेलू कामों में धकेला दिया गया है। दलित महिलाओं को उनकी मज़दूरी, काम के घंटे और छुट्टियाँ नहीं मिलतीं, जब जाति के आधार पर शोषण, उत्पीड़न और दमन का मुद्दा सामने आता है तो वे भी अस्मिता के मुद्दे को लेकर आगे बढ़ते नजर आते हैं।

आज दलित स्त्रियाँ पढ़-लिखकर चाँद को छू रही है। अपनी प्रतिभा की रोशनी दुनिया में फैला रही है। फिर भी उसका संघर्ष कम नहीं हुआ है। उसे समाज में आज भी समानता प्राप्त नहीं है। वह कमाती है, पर पैसा खर्च नहीं कर सकती। वह राजनीति में है, निर्णय नहीं ले पाती। सारे निर्णय पुरुष ही लेते है।उसकी सुरक्षा, उसका मनोरंजन, ओढना-पहनना सब पुरुषों के हाथ में होता है। इसलिए आज इक्कीसवीं सदी में भी दलित स्त्री सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक-सांस्कृतिक स्तर पर संघर्ष कर रही है। परिस्थितियाँ बदली है, स्त्री का संघर्ष भी बदला है। हिंदी की आधुनिक युग की कहानियों में भी यह परिवर्तन छाया हुआ है।

3.1.1 अस्मिता अर्थ एवं अवधारणा

दलित साहित्य एक ऐसी साहित्यिक विधा है जो मानवीय भावनाओं की यथार्थ अभिव्यक्ति करती है। अगर दलित साहित्य की पहली विधा की बात करें तो पहली विधा का नाम 'काव्य' है, लेकिन जिस विधा से दलित साहित्य प्रकाश में आया वह 'आत्मकथा' है। बाद में दलित साहित्य का अनुसरण अन्य विधाओं में भी हुआ। यदि हम ध्यान से देखें तो 'अस्मिता' की अन्वेषण प्रत्येक दलित साहित्य के मूल में है। दलित कथाकारों की कहानियाँ हमें दलित समाज पर हो रहे अत्याचारों, साजिशों का सामना करने के साथ-साथ हीन भावना से मुक्ति पाने की प्रेरणा देती हैं। और यह परिवर्तन के लिए संघर्ष और अपनी पहचान बचाने जैसे विषयों को अभिव्यक्त करने में सफल रही है। दलित कहानियों की विशेषता केवल दलितों की गरीबी, सर्वव्यापी भूख और छुआछूत के कारण होने वाली असहनीय पीड़ा का चित्रण ही नहीं है, बल्कि दलित कहानियां दलित जीवन के भीतर के तनावों और तरह तरह का समस्याओं को उजागर करने में भी विशिष्ट योगदान देती हैं।

'अस्मिता' का पर्यायवाची शब्द 'पहचान' है। इसे अंग्रेजी में आइडेंटिटी कहते हैं। 'अस्मिता' शब्द मुख्य रूप से 20वीं सदी में प्रयोग में आया और यह आधुनिक युग की देन

है। अस्मिता में 'अस्मि' प्रमुख है। 'ता' तो बस एक प्रत्यय है जिसका इस्तेमाल इसे संज्ञा बनाने के लिए किया जाता है। 'अस्मि' का अर्थ है 'मैं' कर्ता के साथ प्रयोग की जाने वाली क्रिया, हम कह सकते हैं कि अस्मिता में संबंधित व्यक्ति के अस्तित्व की उपस्थिति का एहसास होता है। उस तत्व में उसका अस्तित्व ही उसकी पहचान है। तो हम कह सकते हैं कि 'स्व' की खोज ही पहचान के अर्थ को पूरा करती है।

'अस्मिता' का महत्वपूर्ण अर्थ 'व्यक्ति की पहचान' से पूर्ण होता है। 'अहंवाद या अहं' इसका मुख्य तत्व है। जब मनुष्य अपने जीवन में नए जीवन मूल्यों का निर्माण करता है, तो उसे अपनी पुरानी परंपराओं के विरुद्ध विद्रोह करना पड़ता है। यही बात 'अस्मिता' के साथ भी है। रूढ़िवादिता से नई पहचान बनाने के लिए मनुष्य को विद्रोह करना पड़ता है। व्यक्ति स्वतंत्र व्यक्तित्व के विकास के लिए अपने सामाजिक बंधनों, मान्यताओं और परंपराओं से बंधा नहीं रहना चाहता। समाज का हिस्सा होते हुए भी वह समाज के आम लोगों की तुलना में अपनी 'अस्मिता' स्थापित करना चाहता है। इस संदर्भ में डॉ. गणेशदास लिखते हैं - "जब व्यक्ति परिवेश में अपने अनुरूप जीवन जीना चाहता है और वह जी नहीं पाता, तब वह अपने परिवेश में अपने अस्तित्व की खोज करता है। समाज में मनुष्य का अधिकांश व्यक्तित्व दूसरे द्वारा निर्धारित होता है किन्तु मनुष्य की यह इच्छा होती है कि वह अपना व्यक्तित्व स्वयं निर्धारित करे, उसकी इच्छा के साथ-साथ यह प्रश्न भी मन में उठता है कि हम दूसरों की इच्छानुरूप 'क्यों जिये"।[1] उपरोक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि अस्मिता में व्यक्ति को 'स्व' की पहचान के अनुसार जीना चाहिए। दूसरों के मूल्यों की धारणा और दूसरों द्वारा निर्धारित तत्वों पर क्यों जीना चाहिए? इसीलिए अस्मिता में 'स्व' को अधिक महत्व दिया जाता है।

अगर हम गौर से देखें तो 'अस्मिता' की तलाश ही सम्पूर्ण दलित साहित्य के मूल में है। दलित कहानीकारों की कहानियाँ हमें दलित समाज पर हो रहे अत्याचारों, षडयंत्रों का

सामना करने के साथ-साथ हीन भावना से मुक्ति पाने की प्रेरणा देती हैं। और बदलाव के लिए संघर्ष और अपनी पहचान बचाने जैसे विषयों को अभिव्यक्त करने में वे सफल भी रहे हैं। 'अस्मिता' का अर्थ व्यक्ति को वैयक्तिकता का बोध कराता है। यह जीवन के अन्य पहलुओं से भी जुड़ा हुआ है, जहाँ यह समय-समय पर अपना आकृति बदलता रहता है। दलित कहानियाँ केवल दलितों की गरीबी, सर्व-भुखमरी और छुआछूत के कारण होने वाली असहनीय पीड़ा को चित्रित करने की विशेषता नहीं हैं, बल्कि दलित कहानियाँ स्वयं दलितों के जीवन में तनाव और विभिन्न समस्याओं को उजागर करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

3.1.2 अस्मिता की परिभाषा

स्त्री अस्मिता की परिभाषा किसी निश्चित मानदंड में किया जा नहीं सकती। आज साहित्य के गलियारे में स्त्री अस्मिता की व्यापक अनुगंज सुनाई दे रही है। बदलते परिवेश के कारण मनुष्य को अपनी पहचान हासिल करने के लिए संघर्ष करना पड़ रहा है। आज के समय में पहचान का प्रश्न अधिक जटिल हो गया है तथा इसे प्राप्त करना कठिन हो गया है। इस संदर्भ में राजेंद्र यादव कहते हैं- "अब इस आईडेंटिटी नाम के तत्व ने अजब संकट खड़ा कर दिया है। ' अस्मिता' जितनी मेरी है, उतनी भी मेरे परिवेश और परंपरा की भी । उसमें वर्ग, वर्ण, क्षेत्र, लिंग, परंपराएँ सभी कुछ घुसे और घुले-मिले हुए हैं"।[2] यह स्पष्ट है कि आज के दौर में मनुष्य अपनी 'अस्मिता' के लिए बहुत संघर्ष कर रहा है। उनका यह संघर्ष समाज और देश के लिए संकट पैदा कर रहा है। अस्मिता अब विचारधारा से आगे बढ़कर एक आन्दोलन का रूप ले रही है। दलित साहित्य इसका सबसे बड़ा उदाहरण है।

विलियम जेम्स के अनुसार - " व्यक्तिगत अस्मिता को वैसी नैतिक एवं मानसिक प्रवृत्ति माना है कि जो इन्सान को बताती है कि वह व्यक्ति क्या है"।[3]

सुरेन्द्र चन्द्र गुप्त के अनुसार - “अस्मिता वह नहीं अतीत को नकार कर केवल वर्तमान में जीने की प्रेरणा देती है। यहाँ गुज़रा हुआ क्षण ‘मैं’ की सत्ता को जगाता है और आने वाले क्षण उसे पैनाते है। इसके विपरीत अस्मिता वह है जो मानव संबंधों की पहचान करती है ‘स्व’ के वृत्त से बाहर निकलकर विश्व के व्यापक फ़लक से जुड़ने की प्रेरणा देती है। पुरातन को जीर्ण-शीर्ण मानकर उसके त्याग को ही आधुनिक बोध कहने के गर्व में नहीं बनती और प्रकृति के आनन्त्य में एकता के सूत्र को खोजती है”।[4]

अर्चना वर्मा के अनुसार - “अस्मिता एक हद तक संबद्धता, सरोकार, लगाव और अपनत्व का प्रश्न भी है जिसे अंग्रेज़ी में ‘सेंस ओफ बिलोनगिंग’ कहा जाता है”।[5]

'अस्मिता' शब्द जितना छोटा है, इसका अर्थ उतना ही व्यापक है। जहां व्यक्ति के जीवन में विकास के पथ पर आगे बढ़ने के लिए न केवल उसमें 'मैं' का भाव जागृत होता है बल्कि उसे समाज में अपनी पहचान स्थापित करने की प्रेरणा भी मिलती है। 'अस्मिता' में 'मैं' की पहचान के साथ न केवल किसी की जाति, धर्म, वर्ग आदि बल्कि उसकी भाषा, रंग, मूल, क्षेत्र आदि भी जुड़े होते हैं, जिसके साथ व्यक्ति अपनी पहचान हासिल करना चाहता है।

3.1.3 दलित अस्मिता का स्वरूप

‘दलित’ शब्द एक ऐसे समूह को संदर्भित करता है, जो हजारों सालों से जानवरों की तरह रह रहे थे या जानवरों की तरह रहने को मजबूर थे। यदि हम 'दलित' शब्द के अर्थ को एक शब्द के रूप में देखें तो इसकी उत्पत्ति संस्कृत के 'दल' शब्द से हुई है जिसका मतलब टूटना, बिखरा हुआ समूह आदि होता है। और जब दलित विशेषण का रूप ले लेता है तो इसका मतलब टूटा हुआ, दबा हुआ होता है। यह स्पष्ट है कि इस शब्द के अर्थ की उत्पत्ति इसकी राजनीति को भी निर्धारित करती है। डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर ने 'दलित' के लिए अंग्रेजी में 'डिप्रेस्ड' और मराठी में 'भिषकृत' शब्द का प्रयोग किया था। परंतु आज

मराठी और मराठी में सिर्फ एक ही शब्द का इस्तेमाल होता है और वह है 'दलित' शब्द। इस प्रकार, व्यवहार में, इसमें अधिकतर वे लोग शामिल हैं जिन्हें भारत के संविधान में 'अनुसूचित जाति' का दर्जा दिया गया है। इस संदर्भ में डॉ. श्योराज सिंह बेचैन लिखते हैं- "दलित वह है जिसे भारतीय सविंधान ने 'अनुसूचित जाति का दर्जा दिया है। 1933 के दरम्यान उस समय की सरकार ने जो जातीय निर्णय ले लिया उसमें 'डिप्रेस्ड क्लासेस' शब्द का प्रयोग किया है जिसका अर्थ है पद-दलित। वास्तव में 'पददलित' शब्द 'दलित' के पर्यायवाची शब्द के रूप में ही प्रयुक्त किया जाता है। इसी समय भारत में समाजवादी विचारधारा का प्रादुर्भाव हुआ और इस विचारधारा के अंतर्गत जो वर्ग आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से दबा हुआ, कुचला हुआ एवं शोषित था उसे ही दलित वर्ग के रूप में देखा गया। इस प्रकार 19 वीं शताब्दी से ही भारत दलित शब्द का प्रयोग होता रहा है"।[6]

'अस्मिता' शब्द का सामान्य अर्थ 'पहचान' तो है, लेकिन जब इसे एक अवधारणा के रूप में लिया जाता है, तो यह कई अर्थ पैदा करता है। फिर पहचान का दायरा केवल परिचय और जान-पहचान तक ही सीमित नहीं रहता। इसका अर्थ विस्तृत हो जाता है। अपने इतिहास, संस्कृति, सामाजिक स्थिति, आर्थिक स्थिति की पहचान से आगे बढ़कर मानवाधिकारों की पहचान और आशाओं-आकांक्षाओं की पहचान और भविष्य की पहचान तक जाकर इसका अर्थ और भी व्यापक हो जाता है। इन सभी विभिन्न पहलुओं को ध्यान में रखते हुए 'दलित अस्मिता' की प्रकृति पर चर्चा करते हुए यह अध्ययन किया गया।

दलित अस्मिता का एक विशेषता यह है कि दलितों में अपनी जाति की स्थिति के प्रति एक विशेष अस्मिता बोध जागृत करें। आज वे गर्व से स्वयं को दलित कहते हैं। अपनी दयनीय स्थिति एवं उपेक्षित संस्कृति से अवगत होते हुए भी वे अपनी जाति एवं समाज का नाम गर्व से लेते हैं। आज दलित समाज भी अपने ऊपर होने वाले अत्याचारों को समाप्त करने के लिए पुरजोर तरीके से आवाज उठाता है। 'दलित अस्मिता' में जाति के

संदर्भ में दलित व्यक्ति के 'आत्मसम्मान' की भी प्रवृत्ति है। स्वयं अपमान सहने के बजाय, दलित उन परिस्थितियों की निंदा करती है जो उसे दलित बनाती हैं। यही वजह है कि आज दलित समाज बड़े आत्मविश्वास के साथ 'जय भीम' का नारा लगाता है। आज बड़े स्तर पर दलित होने का एहसास आमतौर पर 'जय भीम' के नारे के जरिए ही देखा जाता है। दलित साहित्य आज जिस मुकाम पर है, वहां तक पहुंचने में उसे काफी वक्त लगा है।

3.1.4 जीवन संघर्ष

संघर्ष जीवन की एक परीक्षा है जो अंततः जीत का द्वार खोलता है और समस्या का समाधान करता है। यदि हम संघर्षपूर्ण जीवन जीना चाहते हैं तो हम को अपनी गलतियों को भूलना सीखना होगा। बदला केवल कड़वे परिणाम लाता है। कठिन संघर्ष से ही जीवन में सफलता प्राप्त की जा सकती है। यदि हम काम में संघर्ष देखकर हार मान लेते हैं तो हम कभी भी लक्ष्य तक नहीं पहुंच सकते। कठिन परिस्थितियों में विवेकपूर्ण निर्णय से ही सफलता संभव है। जब संघर्ष का युग समाप्त होता है, तो सफलता का युग शुरू होता है। संघर्ष हमारे अंदर सफलता पाने का जुनून पैदा करता है। यह हमें कड़ी मेहनत करने के लिए प्रेरित करता है। संघर्ष को स्वीकार कर ही सफलता की राह पर आगे बढ़ा जा सकता है। जीवन में कई बाधाएं आती हैं, लेकिन अगर मन में दृढ़ इच्छाशक्ति हो और अपने काम के प्रति समर्पण हो तो हम बाधाओं के बीच भी सफलता का कोई न कोई रास्ता ढूंढ ही लेते हैं। अपने संघर्ष की कहानी के रचयिता हम स्वयं हैं। यह हम पर निर्भर करता है कि हम अपने संघर्ष को किस प्रकार स्वीकार कर रहे हैं। अगर हम नकारात्मकता में डूब जाएंगे तो कभी संघर्ष नहीं कर पाएंगे। अपने लक्ष्य तक कभी नहीं पहुंच पाओगे। हमें सकारात्मक सोच के साथ ही लड़ना चाहिए। यह सकारात्मक दृष्टि ही हमारे कठिन संघर्ष को सरल बनाती है।

प्रस्तुत अध्याय में कहानियों में व्यक्त दलित महिलाओं की समस्याओं, दलित महिलाओं की चेतना, अस्मिता की भावना, पितृसत्तात्मक एवं जाति व्यवस्था की शिकार दलित महिलाओं की समस्याओं, दलित महिलाओं के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य का संक्षेप में अध्ययन किया गया है।

3.2 दलित स्त्री अस्मिता एवं जीवन संघर्ष - सामाजिक परिप्रेक्ष्य

समाज का उदय मनुष्य के साथ ही हुआ। क्योंकि इंसान अकेला नहीं रह सकता। वह प्रथम महत्वपूर्ण इकाई परिवार का सदस्य होता है तथा अपने विकास के साथ-साथ वह स्वयं को समाज के अन्य महत्वपूर्ण समूहों एवं संस्थाओं से भी जोड़ लेता है। किसी भी समाज में व्यक्ति की स्थिति एवं भूमिका समसामयिक सामाजिक मूल्यों एवं आदर्शों पर आधारित होती है। समय के साथ सामाजिक परिस्थितियाँ बदलती रहती हैं, इसके साथ-साथ आदर्श और मूल्य भी बदलते रहते हैं। लेकिन स्त्रियों के संदर्भ में ये बदलाव बहुत धीमी गति से होते जा रहे हैं। यह सच है कि आज परिस्थितियाँ बहुत बदल गई हैं, स्त्रियाँ कई स्तरों पर अपने लिए लड़ना शुरू कर चुकी हैं। उन्होंने अपने माध्यम से सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक और सांस्कृतिक स्तर पर सामाजिक रूप से निर्मित, लिंग आधारित असमानता और सर्वांगीण अभाव पर काबू पा लिया है। अदम्य इच्छाशक्ति और संघर्ष और जीवन में आस्था के माध्यम से इसे तोड़ने की कोशिश की। अपनी कोशिशों में उन्हें काफी हद तक सफलता भी मिली है। युग कोई भी रहा हो, महिलाओं का सबसे बड़ा संघर्ष सामाजिक ही रहा है। उन्हें समाज में अपने अधिकारों और स्वाभिमान के लिए सदैव संघर्ष करना पड़ा है। आधुनिक काल भी इसका अपवाद नहीं है। इसका चित्रण आज हर कहानी में प्रबल हो रहा है। खासकर हिंदी कहानियों में सामाजिक संघर्ष को प्रमुखता से दर्शाया गया है। सामाजिक असमानता के कारण दलित अब तक उपेक्षा, अपमान और उत्पीड़न सहते आ रहे हैं। अतः यह स्वाभाविक है कि दलित कहानी में सामाजिक अत्याचारों का स्वरूप, उनके प्रति दलितों का विद्रोह आदि को विशिष्ट रूप से निरूपित किया गया है।

जयप्रकाश कर्दम की **पगड़ी** कहानी में नारी स्वतंत्रता को महत्व दिया गया है। स्त्री-पुरुष के प्रति प्रचलित सामाजिक सोच को टूटा-फूटा दर्शाया गया है। यह कहानी सगाई में परिवार के मुखिया को पगड़ी बांधकर सम्मानित करने की परंपरा को उजागर करते हुए रची गई है। भारतीय परिवारों में ज्यादातर पुरुष को ही परिवार का मुखिया माना जाता है, लेकिन जब महिला मुखिया की भूमिका में हो तो यह सवालिया निशान बन जाता है। यहाँ कहानीकार ने परिवार की महिलाओं को सम्मान देकर समाज को एक नई राह दिखाई है, आज भी समाज स्त्रियों के साथ होने वाले सामाजिक अन्याय को दूर करने का सम्मानजनक काम कर रहा है। यह महिला केंद्रित कहानी समाज को अपनी एक परंपरा में सुधार का संदेश देती है।

3.2.1 मज़दूरों का ज़मीन्दारों से संघर्ष

भारतीय समाज में मजदूर वर्ग एक ऐसा वर्ग है जो सदियों से शोषण का शिकार रहा है। दलित महिलाएं दोहरे शोषण का शिकार हैं। एक तो उन्हें दलित शोषण से निपटें और दूसरा उन्हें समाज द्वारा भी शोषण का सामना करना पड़ता है। कामकाजी दलित स्त्रियों पर मकान मालिक की हमेशा बुरी नजर रहती है ये स्त्रियाँ मकान मालिक की प्रताड़ना इसलिए बर्दाश्त करती रहती हैं क्योंकि उन्हें अपने परिवार का भरण-पोषण करना मजबूरी है। जमींदारों के घरों में चरवाहा, सब्जियाँ उगाना, पशुपालन, पानी भरना आदि कार्य मजदूरों से बेगार के रूप में करवाया जाता है। इन कार्यों के लिए उन्हें कोई पारिश्रमिक नहीं मिलता है। खेतिहर मजदूर जमींदार द्वारा दी गई कुछ बीघे जमीन और उसके द्वारा दी गई मजदूरी पर आश्रित बने रहते है। लेकिन दलित कहानियों में स्त्रियाँ इस प्रथा सहने को तैयार नहीं हैं। कुसुम वियोगी जी की कहानी **'अंतिम बयान'** में जब अतरो जमींदार राजेंद्र के खेत में घास काटने जाती थी तो वह अतरो को चिढ़ाता था। यहाँ अतरो राजेंद्र की हरकतों के खिलाफ अपनी भाभी से कुछ इस तरह बोलती है- “भाभी! अगर उसने मुझे कुछ

कह दिया तो फिर देख दराती से गन्ने-सा कतरकर रख दूँगी हरामख़ोर को! गाँववाले देखते रह जाएँगे"।[7] यहां मजदूर अतरो के साथ मकान मालिक राजेंद्र के व्यवहार के खिलाफ आवाज उठाई गई है।

3.2.2 दलित स्त्री यौन शोषण से प्रति संघर्ष

आधुनिक हिंदी साहित्य में ऐसी कई स्त्रियाँ हुई हैं जो सामाजिक शोषण का शिकार हुईं और अपने साथ हुए अत्याचारों के कारण या तो मर जाती है या शेष जीवन भ्रष्ट जीवन जीने के लिए अभिशप्त हो जाती है। दलित महिलाओं के जीवन संघर्ष के आयाम कई रूपों में दिखाई देते हैं जिनमें से एक है यौन शोषण। दलित महिलाओं का यौन शोषण अधिकतर कथा साहित्य में दर्शाया जाता है। कहीं-कहीं ऐसे संदर्भ भी मिलते हैं जहां उन्हें बचपन से ही इस प्रकार शोषण के योग्य बनाया जाता है, जहां पात्रों को यह समझाने में समय व्यतीत किया जाता है कि उनके साथ क्या हो रहा है। कम उम्र में मां बनने जैसी स्थितियां मौजूद रहती हैं।

दलित स्त्रियाँ सवर्ण पुरुषों के खेल का पात्र है। कावेरी की कहानी **'सुमंगली'** की नायिका सुगिया जब बारह वर्ष की उम्र में ठेकेदारों द्वारा यौन शोषण का शिकार होती है, तो उसकी सहेली दुखना की माँ उससे कहती है - "चुप रह बेटी! चुप रह। यह तो एक-न-एक दिन होना ही था, पर तू बड़ी अभगन है री। जो इस छोटी उम्र में ही सब कुछ झेलना पड़ा। अब एकदम चुप हो जा, वर्ना उस पिशाच को अगर मालूम हो गया तो तेरी चमड़ी उधेड़कर रखदेगा। हाँ, हम गरीबों का जन्म ही इसलिए हुआ है। हमारी मेहनत से अट्टालिकाएँ तैयार होती है और पुरस्कार के बदले में हमारे शरीर को रौंदा जाता है"।[8]

दलित स्त्री को जातीयता की दृष्टि से जो लोग अछूत मानते है, वे ही जब उनका शारीरिक शोषण करते है, तब कोई अस्पृश्यता का सवाल ही नहीं उठता। कुसुम मेधवाल की कहानी **'अंगारा'** में जब ठाकुर का बड़ा बेटा सुमेर सिंह और उसका चाचा नाथू सिंह जमुना

के साथ बलात्कार करते हैं, तो वह उनसे पूछती है- "आप लोग दिन के उजाले में हमारी परछाईं से भी परहेज़ करते है। हमें छूते ही आप अपवित्र हो जाते है, किन्तु रात के अँधेरे में हमारा पसीना और होंठों से... पर भी आप अपवित्र नहीं होते? ऐसे लिपट जाते हैं, जैसे प और हम में कोई फंर्क नहीं है? आपकी छूत-छात और जातपात कहाँ चली गई?"।[9] दलित कहानियों में दलित जाति के आधार पर दलित महिलाओं के यौन शोषण की स्थिति स्पष्ट रूप से दिखाई देती है।

3.2.3 दलित लड़कियों की शिक्षा से जुड़ा संघर्ष

दलित लड़कियों को शिक्षा, स्वास्थ्य, पानी, स्वच्छता जैसी बुनियादी सेवाओं तक पहुँचने में जातिगत और लैंगिक पक्षपात का विरोध करना पड़ता है। स्कूल में दलित बच्चों को अक्सर शिक्षकों और अन्य छात्रों द्वारा 'अछूत' माना जाता है। उदाहरणार्थ कक्षाओं में अलगाव, स्कूल के कार्यों से बहिष्कृत करना, स्कूल में पानी की आपूर्ति से वंचित करना शामिल है। भारत आज भी जातिवाद के जाल में फंसा हुआ है और समाज जाति और धर्म की संकीर्ण मान्यताओं से ऊपर नहीं उठ पाया है। जहां स्कूलों में बच्चों को उनकी जाति के कारण अपमानित किया जाता है, वहीं कार्यस्थलों पर शिक्षक के रूप में काम करने वाली महिलाओं को भी सामाजिक शोषण का शिकार होती है।

जौसे - सूरजपाल चौहान की **'बदबू'** की नायिका संतोष एक मेधावी छात्रा है लेकिन उसके पिता उसके पढ़ाने के खिलाफ हैं क्योंकि वह अंधविश्वास की शिकार है। इस पर पं. मंगलराम उसके पिता को समझाने का प्रयास करते हैं कि- "किशोरिया तेरी छोरी पढ़ने में होशियार है, पूरे स्कूल में अव्वल आती है... मेरी छोरी के संग उसे शहर भेज दे, उसके रहने और पढाई का खर्चा भी देते रहूँगा, बस तू एक बार हाँ कर दे"।[10] पर उसके पिता उसकी सलाह नहीं मानता तथा पण्डित जी से कहता है कि, "तुम ऊँची जाति के लोग हो? अपनी जवान होती बेटी को शहर भेज सकते हो, मैं ऐसा करूगा तो समाज में मेरी नाक

कट जायेगी, बिरादरी के सभी लोग ताली देकर हँसेगे और कहेंगे कि विवाह योग्य लड़की को शहर भेज दिया... ना पण्डित जी ना, मैं तो अब इसके हाथ पीले करके बेटी ऋण से मुक्त होना चाहता हूँ"।[11]

संतोष के पिता उसकी शादी जल्दी करना चाहते थे इसलिए उन्होंने उससे साफ कह दिया कि- "मुझे दूसरों से क्या, दूसरे अपनी बेटियों को कहीं भी पढ़ने भेजें, मैं ना भेजने का इसे इतनी दूर, फिर हमने सन्तोष को आगे पढ़ा-लिखाकर कौन-सा कलट्टर(कलेक्टर) बनाना है"।[12]

नामदेव जी की **'चरिता'** कथा में भी घरवाले उसकी पढ़ाई बंद करवा देते हैं। उसकी माँ कहती है कि- "चरिता अब सयानी हो रही है। अब जल्दी से इसका विवाह कर देना चाहिए। लड़की जात, कोई ऊँच-नीच हो गयी तो हम कहाँ मूँह दिखायेंग?"।[13] उसने बी.ए. तक की पढ़ाई के लिए अपने परिवार से लड़ाई की। वह आगे भी पढ़ना चाहती थी। लेकिन उसके परिवार ने बी.ए. के बाद पढ़ाई से ज़्यादा महत्वपूर्ण शादी को समझा और उसकी शादी नील से करवा दी।

दलित लड़कियों की माता-पिता जल्द ही अपनी बेटियों के विवाहित कर ससुराल में भेजती है। इसलिए उनका कार्यक्षेत्र घर के भीतर सीमित होती है। हमारे समाज में व्याप्त जाति व्यवस्था दलितों के शैक्षिक स्थिति में रोड़ा पैदा करते हैं। अस्पृश्यता और छुआछूत की मार ज़्यादातर लड़कियों को शिक्षा से वंचित कर देती है। शिक्षा का अभाव दलित स्त्री के प्रति होनेवाले अपराधों को बढ़ा रही है और वे कई अधिकारों से वंचित भी होती है। अशिक्षा के कारण वे अपनी तरफ होनेवाले शोषण को पहचानने में असमर्थ होती है। यह उनकी हैसियत और दयनीय बना देती है।

3.2.4 अस्मिता की खोज से जुडी संघर्ष

स्त्री अस्मिता सिर्फ व्यक्तिगत लड़ाई नहीं है, यह एक सामाजिक लड़ाई भी है। यह अपेक्षाकृत अधिक कठिन है। भारतीय स्त्री के सामने सैद्धांतिक, तार्किक और व्यावहारिक अनेक प्रश्न हैं। नई परिस्थितियों ने उसे नई ज़िम्मेदारियाँ दी हैं, प्रतिक्रियावादी विचारधाराएँ हमेशा रहेंगी लेकिन स्वाभिमान की चेतना उसके संघर्षों में उसका साथ देगी। आज शिक्षा के माध्यम से दलित महिलाएं भारतीय समाज में दलित महिलाओं पर अत्याचार और उन पर अत्याचार करने की सदियों पुरानी प्रथा को तोड़ने का प्रयास कर रही हैं। दलित स्त्रियाँ अपने अधिकारों के प्रति जागरूक है और संघर्ष करने में सक्षम है। इसके अलावा आधुनिक युग में इसे उच्च जाति समुदाय के बराबर का दर्जा मिल रहा है। इसीलिए दलित महिलाएं अपनी पहचान स्थापित करने में सफल रही दलित कहानीकारों ने अपनी कहानियों में स्त्री के ऐसे पहलुओं को दर्शाया है।

मोहनदास नैमिशराय जी की कहानी **'यात्रा'** में पात्र मुरिया अपनी अलग पहचान बनाती है। वह काम ढूंढने के लिए जंगल से शहर जाती है और अधिकारी सविता शर्मा से उसकी बातचीत का एक दृश्य है - "देखो मारिया, शहर में रहना है तो शहर के तौर-तरीकों पर चलना होगा" ।[14]

"नाम ही नहीं, कुछ बदलना भी होगा अपने भीतर और बाहर। समय की यही ज़रूरत है" ।[20] सविता शर्मा के कहने पर वह अपना नाम और पहचान बदल लेता है। यहां एक दलित महिला को अपनी पहचान बनानी होगी। नई पहचान बनाने के लिए नाम, रूप और रहन-सहन बदलना पड़ता है, तभी समाज में जगह मिलती है।

टेकचंद जी की **ए.टी.एम** कहानी में सुमित्रा की ससुराल वालों ने उसकी अस्मिता पर सवाल उठती है। सुमित्रा अपना कमाया हुआ पैसा अपने पास नहीं रख सकती और उसे अपनी सास को देना पड़ता है। शादी से पहले उनका व्यक्तित्व शादी के बाद बदल जाता है।

उसके खिलाफ उसकी सासुरालवालों की शिकायत इस प्रकार है- "चौधरी स्साब! नौकरी लागी ओड़ बहू तै हमनै तै कोई फैदा ना होया...."।[15]

"बहू-बेट्टी नै काण-कायदा भी होणा चाहिए...म्हारे पप्पू की बहू नै देखो, गर का काम सँभाले, नौकरी भी करै सै अर मीहने तनखा ला के हाथाँ मैं धर दे सै अक् ल्यो पाप्पा जी..." ।[16]

"हमने तै बेरा भी कोना चालता अक कित तनका गयी..." ।[17] दूसरे घर में एक बहू अपना ए.टी.एम अपनी सास को थमा देती है। वह अपने काम पर सास-ससुर से आने-जाने के लिए परिवहन की भी मांग करती है। तो सुमित्रा के ससुराल वाले भी यही चाहते हैं। लेकिन सुमित्रा अपनी अस्मिता खोने को तैयार नहीं थीं। उसने सभी से कहा कि मैं एटीएम नहीं दूंगी, यह मेरी बचत है। यहाँ साफ दिखाया गया है कि शादी के बाद लड़की की पहचान अपने आप बदल जाती है। कभी पति के लिए तो कभी सास-ससुर के लिए। वह अपनी पहचान छुपाती है और दूसरी पहचान अपना लेती है। स्त्री अपने परिवेश के घात-प्रतिगातों और पुरुष सत्ता के द्वारा निर्धारित नियमावली में जीवन जीने के लिए विवश होती रही है।

प्राचीन काल से आधुनिक काल तक महिलाओं की स्थिति में अनेक परिवर्तन आये हैं। प्राचीन काल में महिलाओं को उच्च स्थान और सम्मान प्राप्त था, लेकिन मध्यकालीन और आधुनिक युग में उनकी स्थिति खराब हो गई। महिलाओं की अस्मिता: यह पुरुषों के समान महिलाओं का भी समान अधिकार है। यह महिलाओं और पुरुषों के वर्चस्व के प्रति महिलाओं के प्रतिशोध का एक समझदार दृष्टिकोण है। औरत को केवल स्वतंत्र होकर निर्णय ले सकना या आर्थिक रूप से स्वतंत्र हो जाना ही उसकी अस्मिता का अर्थ होगा। महिलाओं के प्रति समाज के दृष्टिकोण और मानसिकता में बदलाव, क्योंकि एक महिला को चुनने और अस्वीकार करने की स्वतंत्रता ही एक महिला की पहचान की मुख्य शर्त है।

3.3 दलित स्त्री अस्मिता एवं जीवन संघर्ष -आर्थिक परिप्रेक्ष्य

दलित अतीत से ही गरीबी से जुड़े हुए हैं। इस स्थिति के लिए जाति व्यवस्था मुख्य कारण और जिम्मेदार है। इस व्यवस्था ने सदियों से दलितों का सामाजिक के साथ-साथ आर्थिक शोषण भी किया है। यह शोषण दलितों पर जाति व्यवस्था द्वारा थोपा गया है। गाँवों में जातिवाद के चलते रोजगार पाने में बहुत सी समस्याएँ आती है। दलित वर्ग आर्थिक शोषण का शिकार होकर अपने नारकीय जीवन-शैली को झेलते हुए एक दिन स्वयं की बलि दे देता है। दलित वर्ग को आर्थिक रूप से कमजोर रखने का कार्य कुछ हद तक उच्च वर्ग के लोग भी करते है, ताकि दलित धनी होकर उनके बराबर न बन जायें। सूरजपाल चौहान की कहानी **'चोट'** में दलित महिला रज्जो को अपने पति की चपरासी की नौकरी के बजाय सरकारी कर्मचारी की नौकरी मिल जाती है। यहां सिर्फ उनके साथ ही नहीं बल्कि उनके पिता के साथ भी ऐसा ही हुआ. इसकी एक झलक यहां दी गई है- "उसके पिता परसारी राम पाँचवीं कक्षा पास थे और उनका साथी पण्डित रामानन्द अनपढ़ था। दोनों की सरकारी नौकरी साथ-साथ व एक ही दिन लगी थी। रज्जो के पिता सफ़ाई कर्मचारी और उनका साथी पण्डित रामानन्द चपरासी!"।[18] यहाँ उच्च अधिकारी हमेशा दलितों को पीछे रखते हैं, उन्हें आगे बढ़ने नहीं देते। रज्जो और उसके पिता के साथ भी ऐसा ही हुआ।

इसी प्रकार दीपा जी की कहानी **'जीत'** में रेखा के दलित होने के कारण 'सिपाही भर्ती परीक्षा' में हेड इंस्पेक्टर का व्यवहार इस प्रकार है -"शौचालय में जो टट्टी पड़ी है, उसे साफ कर दो। न जाने कौन बिना पानी डाले चला गया है"।[19] यहां हेडमास्टर नहीं चाहते कि कोई दलित महिला कांस्टेबल बने, ऐसे विचार रखने वाले वरिष्ठ अधिकारी को यहां देखा जा सकता है कि दलितों का काम शौचालय साफ करना है।

दलित वर्ग की आर्थिक चेतना का दृश्य हमारे दिल को झकझोर देता है। दलित वर्ग का संघर्ष निरन्तर अपनी मंजिल (लक्ष्य) की ओर अग्रसर है। संविधान निर्माता डॉ. अंबेडकर ने सदियों से उपेक्षित रहे इस वर्ग को सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, शैक्षिक, धार्मिक आदि सभी मानवाधिकार प्रदान किए हैं। अब दलित समाज अत्यंत खराब आर्थिक स्थिति से बाहर निकलकर शिक्षा की ओर अग्रसर हो रहा है। दलितों के जीवन में आर्थिक तंगी की लाचारी और दलित महिलाओं द्वारा अपनी आर्थिक स्थिति सुधारने के संघर्ष को उजागर करने वाली कुछ रचनाएँ दलित कहानियों में मिलती है।

3.3.1 दलित स्त्रियों का श्रम का शोषण

एक बात तो साफ़ है कि दलित समुदाय की महिलाएँ हमेशा से मेहनती और आत्मनिर्भर रही हैं। और किसी समाज के विकास के लिए इससे बड़ी कोई बात नहीं है। लेकिन जाति उनकी राह में इतनी बड़ी बाधा है कि मेहनती होने के बावजूद आज वे सबसे बदतर हालत में हैं। दलित महिलाओं के श्रम का शोषण और उनके श्रम को कम आंकना। उनसे 20-30 रुपए के लिए दिन-रात मेहनत करवाना और उन्हें पूरा वेतन न देना उन्हें गुलाम बनाने की साजिश है। यदि उनके श्रम का शोषण न होता और उन्हें सही वेतन मिलता तो शायद दलित महिलाओं की हालत ऐसी न होती।

सूरजपाल चौहान की कहानी **'चोट'** एक दलित महिला के श्रम के शोषण को प्रतिबिंबित करती है। इस कहानी की नायिका रज्जो बत्तीस साल की उम्र में विधवा हो जाती है। उसका पति सरकारी दफ्तर में चपरासी था। उन्हें अपने पति की नौकरी के स्थान पर सरकारी कर्मचारी की नौकरी मिल गयी। लेकिन उच्च जाति के हरिचरण शर्मा की अशिक्षित पत्नी को चपरासी के पद पर नियुक्त कर दिया गया। उसे चपरासी का पद इसलिए नहीं मिला क्योंकि वह दलित जाति से थी, जिसे अछूत माना जाता है। आज रज्जो इसी तुच्छ मानसिकता का शिकार हो गई और उसे इस चोट को अपने मन में दबाना पड़ा। सरकारी

नौकरी हो या कुछ और, सब कुछ उच्च अधिकारियों की मर्जी से चलता है। यहां नैतिक शक्ति का कोई प्रयोजन नहीं है।

कावेरी जी की कहानी **'सुमंगली'** में लेखिका ने दलित महिलाओं के श्रम शोषण का उल्लेख किया है। इस कहानी में एक बूढ़ी औरत जो मजदूर है, वह कहती है कि- "हमारी मेहनत से अट्टालिकाएँ तैयार होती हैं और उसके पुरस्कार के बदले में हमारे शरीर को रौंदा जाता है"।[20] दलित महिलाएँ कमज़ोर होने के कारण समाज के पूँजीपति वर्ग उन पर अत्याचार करते हैं। इस प्रकार दलित कहानियों में दलितों को उनके श्रम, मेहनत और बेगार के बदले में उच्च जातियों से गाली, शोषण, उत्पीड़न, उपेक्षा आदि मिलती है। दलित अपने श्रम के बल पर उच्च जातियों के लिए महल बनाते हैं। मजदूरों के श्रम के आधार पर ही बड़े-बड़े कारखाने चलते हैं। उच्च जातियाँ इस तथ्य को भूल जाती हैं। वे दलितों को अपना गुलाम समझते हैं और उनके श्रम पर अपना अधिकार जताते हैं।

3.3.2 आर्थिक शोषण

घर की आर्थिक स्थिति ठीक नहीं है तो महिला को परिवार की चिंता अधिक रहती है। गरीबी से वह ज्यादा प्रभावित होती है क्योंकि वह एक महिला है। यहाँ नामदेव जी की **'चरिता'** कहानी में परिवार चलाने के लिए पति नील से पैसे मांगने वाली पत्नी की दुर्दशा को चित्रित की गई है - "बस इतना ही, इससे क्या होगा? घर के हज़ारों ख़र्च होते है वो सब कैसे पूरा होगो?"।[21]

"बाक़ी तुम्हारी सैलरी भी तो हैं चरिता" ।[22]

"वह तो होम लोन का ईएमआयी और परिवार की बहुत सारी ज़रूरतों को पूरा करने में ख़र्च हो जाती है। तुम्हें अच्छी तरह पता है कि बच्चों के स्कूल की फीस, ट्यूशन फीस, बिजली का बिल और घर की अन्य बाक़ी ज़रूरतों को मैं ही पूरा करती हूँ, और तुम थोड़े से

रुपये फेंककर हमेशा मर्दानगी की धौंस दिखाते हुए एहसान जताते हो" ।[23] चारिता की यह बात सुनकर नील क्रोधित हो गया और उसे डांटने लगा तथा उसे मारने की भी कोशिश की। कहानी में हमें एक दलित महिला का मार्मिक चित्रण देखने को मिलता है, जो अपने पितृसत्तात्मक विचार रखने वाला पति द्वारा आर्थिक शोषण का शिकार बन जाती है।

कावेरी जी **'सुमंगली'** में कहानी का पात्र सुगिया बचपन से ही मेहनत मजदूरी करती आ रही है लेकिन उसके पास अपने बच्चे के इलाज के लिए पर्याप्त पैसे नहीं हैं। सुगिया अपना आँचल फैलाकर विनती करती है-"बाबू! बड़ी मेहरबानी होगी"।[24] ठेकेदार मूंछ पर ताव देते हुए बोलता है "आ पहले इधर आ। मेरी बुलबुल बच्चे को तुरंत अस्पताल ले जाना है। इस दुखिया पर दया करो"।[25] मकान मालिक नशे में था इसलिए वह उसकी फरियाद नहीं सुन सका। उसने बच्चे को कीचड़ से निकाल कर एक तरफ रख दिया। अपनी इज्जत कुर्बान करने के बाद भी सुगिया बच्चे को नहीं बचा सकी। यहां आर्थिक शोषण इस रूप में मौजूद है कि बाल मजदूरी के लिए पात्र सुगिया बचपन से ही अपने मास्टर ठेकेदार के लिए कड़ी मेहनत करती है लेकिन उसके पास अपने बच्चे का इलाज कराने के लिए पैसे नहीं होते हैं।

3.3.3 दलितों का शहर के प्रति आकर्षण

हिन्दी दलित कहानियों में दलितों का शहरों के प्रति आकर्षण स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। गाँवों में अपनी नारकीय जीवनशैली को बदल नहीं पाते और जमींदारों के अत्याचारों से परेशान होकर दलित शहरों में अपना अस्तित्व तलाशने निकल पड़ते हैं। शहरों की चकाचौंध, नौकरियां और अन्य सुविधाएं गरीबों को शहर जाने के लिए आकर्षित करती हैं। अक्सर ये दलित रोजगार और अपने बच्चों की बेहतर शिक्षा के लिए शहरों की ओर रुख करते हैं।

ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानी **'अंधड़'** में सविता नाम की दलित महिला अपने कुटुंब के साथ शहर में रहती है। उसका पति मिस्टर लाल अपने परिवार को गांव की गंदगी और रिश्तेदारों से दूर रखता है। वे अब ऊंची जातियों की जीवनशैली अपनाते हैं। इसी दृश्य की एक झलक प्रस्तुत है -"आज वह राजधानी की पॉश कॉलोनी के शानदार फ्लैट में रहते है, जहाँ उनके अतीत की परछाई तक नहीं पहूँच सकती है। बच्चे अग्रेज़ी पब्लिक स्कूलों में पढ़ते है। वो नहीं जानते कि उनके ननिहाल के लोग कौन है? चाचा, ताऊ, दादा, दादी कौन है?"।[26] उनकी कहानी **'खानाबदोश'** में मानो-सुकिया (पति-पत्नी) गांव छोड़कर शहर के एक भट्ठे पर काम करने आते हैं। सुकिया मानो से कहता है - "बड़े बूढ़े कहा करे हैं कि आदमी की औकात घर से बाहर कदम रखणे पे ही पता चले हैं। घर में तो चूहा भी सूरमा बणा रह"।[27]

सूरजपाल चौहान की कहानी **'बदबू'** में पंडित मंगतराम चाहते हैं कि दलित लड़की संतोष उनकी बेटी के साथ पढ़ने के लिए शहर जाए। वे जानते हैं कि शहर में अच्छी शिक्षा उपलब्ध है, इसलिए पंडित जी संतोष के पिता से कहते हैं। - "किशोरिया, तेरी छोरी पढ़ने में होशियार है, पूरे स्कूल में अव्वल आई है। मेरी छोरी के संग उसे भी भहर भेज दे। उसके रहने और पढ़ाई का खर्चा भी मैं देता रहूँगा, बस तू एक बार हाँ कह दे"।[28]

मोहनदास नैमिशराय की कहानी **'यात्रा'** दलितों के शहर के प्रति आकर्षण और जंगल के प्रति उनके डर को प्रतिबिंबित करता शादी के बाद नायिका मुरिया और उसका पति छुगन जंगल छोड़कर काम के लिए शहर चले जाते हैं। कहानी में छुगन कहते हैं - "आदिवासी जीवन और उनकी अस्मिता बचाने के लिए अब कोई बिरसा मुण्डा नहीं आयेगा"।[29] छुगन के इस कहने पर बहुत सारा अर्थ निगूढ़ है। वह जानता था कि अगर उसे अपनी ज़िंदगी बदलनी है तो उसे खुद को बदलना होगा। कोई और उसके लिए नहीं

आएगा। जंगल में आदिवासियों के लिए कुछ नहीं बचा था, इसलिए उन दोनों ने शहर जाकर रहने का फैसला किया।

श्योराज सिंह बेचैन की कहानी **'हाथ तो उग ही आते हैं'** की नायिका रुक्खो गांव छोड़कर शहर में नई जिंदगी जीने आई है। यह सोचकर कि गांव की बुराइयां और दुर्व्यवहार शहर में नहीं होंगे, यहां सब बराबर हैं। वह अपने बच्चे के साथ अकेली रहती है। जब उपासक ने रुक्खो से पूछा कि उसने गाँव क्यों छोड़ा, तो उसने जवाब दिया कि -"पूलीस को ख़बर देने का इल्ज़ाम चमार-भंगियों की बस्ती पर लगाया गया। सो मुसलमानों और दलितों पर एक-एक ही तरह का हल्ला बोला गया। मेरा पूरा परिवार मार दिया गया"।[30] वह गाँव के लोगों की व्यक्तिगत मानसिकता से बचने के लिए शहर आई लेकिन शहर में भी उन्हें गांव की पारंपरिक सोच का शिकार होना पड़ा। शहर हो या गांव, इंसानी दिमाग का कोई इलाज नहीं है सिवाय वह खुद को बदल ले।

इस प्रकार दलितों का शहर की ओर आकर्षण दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। दलित गांवों में नारकीय जीवन, भूख, शोषण, अशिक्षा आदि से दुखी और व्यथित होते हैं तथा उच्च वर्ग के समान स्वच्छ, प्रतिष्ठित और शिक्षित लोगों की मित्रता से परिपूर्ण अच्छे और सुखी जीवन की कल्पना करते हुए शहरों की ओर आकर्षित होते हैं। वे अपने पैतृक गांव की जीवनशैली से परेशान होकर शहरी जीवन में अपना अस्तित्व तलाशने की चाहत में लगातार गांव से शहर की ओर पलायन कर रहे हैं।

3.4 दलित स्त्री अस्मिता एवं जीवन संघर्ष - सांस्कृतिक-धार्मिक परिप्रेक्ष्य

दलित कहानियों में धार्मिक-सांस्कृतिक विद्रोह के स्वरों को पहचानने से पहले यह जानना ज़रूरी है कि धर्म और संस्कृति क्या हैं। भारत में मुख्य धर्म हिंदू धर्म, बौद्ध धर्म, ईसाई धर्म, सिख धर्म और इस्लाम हैं। दलित खुद को हिंदू धर्म और द्रविड़ संस्कृति से जोड़ते हैं। लेकिन दलित सदियों से शोषित, अपमानित और छुआछूत के शिकार रहे हैं और

उन्होंने दूसरे धर्मों में शरण ली है। हिंदू धर्म का हिस्सा माने जाने के बावजूद संविधान से पहले दलितों को हिंदू मंदिरों में पूजा करने की इजाजत नहीं थी। संस्कृति के अनेक आयाम हैं। धर्म भी संस्कृति का एक आयाम है। जबकि संस्कृति एक संपूर्ण जीवन पद्धति है।

मनुष्य समाज में रहता है, इसलिए वह एक सामाजिक प्राणी है और संस्कृति का निर्माता भी है। मनुष्य के बिना संस्कृति की कल्पना नहीं की जा सकती। संस्कृति का निर्माण केवल प्रकृति और उसके तत्वों से नहीं होता, बल्कि मनुष्य के आंतरिक मूल्यों की अभिव्यक्ति महत्वपूर्ण होती है। इस संदर्भ में समाजशास्त्री डॉ. श्यामाचरण दुबे कहते हैं - "संस्कृति मनुष्य की वह रचना है जिसमें कि मानव की सृजनात्मक शक्ति और योग्यता का चरम निहित है। संस्कृति में मनुष्य समाज के इतिहास की विकास कड़ियों के सूत्र दर्ज हैं। संस्कृति जीवन और उसके क्रिया-प्रतिक्रियाओं का संचय है। उसमें प्रकृति और मनुष्य की सहभागिता से निर्मित जीवन की भौतिक सामग्रियों की उपयोगिता की संकल्पनाएँ समाहित हैं। संस्कृति में मनुष्य के बाह्य और आन्तरिक मूल्यों की अभिव्यंजना होती है। संस्कृति मनुष्य की नियन्ता और उपभोग्य भी हैं। संस्कृति वह जीवन शैली है, जिसे मनुष्य पूर्वजों से ग्रहण करता आया है। संस्कृति मनुष्य को जीवन जीने की एक उच्च भाव-भूमि प्रदान करती हैं। संसार में अनेक प्रकार की संस्कृतियाँ विद्यमान हैं। प्रत्येक जनगण्य की संस्कृति अलग होने का कारण मनुष्य की आवश्यकताओं की पूर्ति का अलग-अलग ढंग, प्राकृतिक पर्यावरण और समाजगत मान्यताओं पर विकसित ढाँचे पर निर्भर होना है"।[31]

हिंदू संस्कृति के बारे में कहा जाता है कि इस धर्म में व्यक्तिगत स्वतंत्रता महत्वपूर्ण है। हिंदू संस्कृति में व्यक्ति को अपने देवता, पूजा, धर्म, व्रत, साधना और उपासना के संबंध में अपने विचार और आलोचना व्यक्त करने की स्वतंत्रता है। लेकिन भारत में हमेशा से दो संस्कृतियाँ रही हैं। एक है उच्च जाति की संस्कृति जो हमेशा से भोगवादी और विलासितापूर्ण जीवन जीने वाली संस्कृति रही है। इस संस्कृति में केवल व्यक्ति को ही

महत्व दिया गया है और उसे समाज से अलग रखा गया है। इस संस्कृति में व्यक्ति केवल अपनी जाति के बारे में सोचने लगा और समाज पिछड़ने लगा। अत: इस जाति प्रेम के कारण देश का विकास नहीं हो सका। ऊँची जातियाँ दलितों को उनकी जाति के कारण अपने पास बैठने नहीं देती थीं और उन्हें शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार भी नहीं देती थीं। धार्मिक समारोहों की अनुमति नहीं है और मंदिरों में पूजा निषिद्ध है। लोगों को गांव के किसी कोने में रहने के लिए मजबूर कर धन जमा करने पर रोक लगाएं। दलित लेखक आज अपने साहित्य में उसी शोषण और उत्पीड़न का चित्रण करते हैं, जैसा उनकी भाषा, संस्कृति और जीवन में दिखाई देता है। आज दलित समाज अपनी संस्कृति को उच्च वर्ग की संस्कृति से अलग देखता है। यह संस्कृति जातिविहीन है. क्योंकि उन्होंने सदियों से जाति व्यवस्था के नाम पर कई तरह के अत्याचार झेले हैं। समानता, स्वतंत्रता और भाईचारा दलित संस्कृति का मुख्य केंद्र बिंदु है। संस्कृति ने कभी भी जाति व्यवस्था को स्थान नहीं दिया है। बल्कि वे जाति व्यवस्था का विरोध करते हैं। वह एक ऐसे दृष्टिकोण का प्रतीक है जो मानवीय मूल्यों का सम्मान करता है। दलित संस्कृति की अपनी एक अलग पहचान है। उनके अनुष्ठान, त्यौहार, लोक गीत और देवी-देवताओं में विश्वास उन्हें अन्य समुदायों की संस्कृति से अलग बनाते हैं। ये सब दलित कथाकारों की कहानियों में चित्रित है।

दलित समाज सदियों से अपनी 'धार्मिक अस्मिता' के लिए तरस रहा है, लेकिन सवर्ण समाज ने उसे कभी अपने धर्म का हिस्सा नहीं बनने दिया। वह हिंदू धर्म का पालन करता रहा है और उसके भगवान और आस्था की पूजा करता रहा है। हिंदू धर्म की तरह दलित भी देवी-देवताओं की पूजा करते रहे हैं, त्यौहार और उत्सव मनाते रहे हैं, फिर भी वे कभी इसका हिस्सा नहीं बन पाए हैं। धर्म के संबंध में उनकी 'पहचान' हमेशा हिंदू धर्म से अलग रही है। आज दलित समुदाय ने अपनी अलग पहचान बनानी शुरू कर दी है और बौद्ध और ईसाई धर्म अपनाकर अपनी 'पहचान' दिखा रहा है। दलित समाज हिंदू जाति व्यवस्था में

चौथे स्थान पर है, जिसके कारण उनकी धार्मिक स्थिति बहुत ख़राब रही है। हिंदू धर्म में व्याप्त छुआछूत के कारण दलितों को जानवरों से भी बदतर माना जाता था। अगर कोई दलित किसी ऊंची जाति के व्यक्ति को छू लेता था तो उसे सजा दी जाती थी। दलितों को वेद पढ़ने या सुनने का अधिकार नहीं था। अगर कोई दलित गलती से भी वेद पढ़ लेता तो उसके कानों में पिघला हुआ शीशा डाल दिया जाता था। दलितों को धार्मिक दृष्टि से कोई अधिकार नहीं था। वे गुलामों की तरह अपना जीवन जी रहे थे। डॉ. बाबा साहब ने दलितों का धर्म परिवर्तन कर उन्हें नई पहचान दी है। जैसे कि मोहनदास नैमिशराय की कहानी **'यात्रा'** में वह मुरिया से मारिया बनकर अपना धर्म बदलते नजर आते हैं। सुमित्रा महरोल जी की कहानी **'प्रतिकार'** में मीता हिंदू होते हुए भी दलित होने के बावजूद अचानक उसके फ्लैट के आस-पास की सभी महिलाएं उसे अनदेखा करने लगीं और जातिसूचक गाली-गलौज भी करने लगीं। यहां मीता धार्मिक पहचान से जुड़ी दो घटनाएं बता रही हैं। पहला घटना यह है कि - "पड़ोसी हमारी कास्ट के विषय में सशंकित होने के बाद हमसे नितान्त औपचारिक हो जाते। आस पड़ोस में होने वाले सामाजिक समारोहों में या तो हमें बुलाया ही न जाता और यदि बुला भी लेते तो हमारी उपेक्षा की जाती। अभी 15 दिन पहले सामने वाली आंटी ने सुन्दरकाण्ड का पाठ करवाया तो सबको आमन्त्रित किया, किन्तु हमें निमन्त्रण देने कोई न आया"।[32]

दूसरी घटना करवा चौथ के दिन हुई। मीता बता रही है- "करवाचौथ पर आस-पास की सभी स्त्रियाँ शाम को तनेजा आंटी के यहाँ कथा सुनने गयी थी, किन्तु मुझे किनी ने भी नहीं बताया कि तनेजा आंटी के यहाँ कथा सुनने का आयोजन किया गया है। न ही जाते समय किसी ने मुझे आवाज़ देकर बुलाया"।[33] यहाँ यह स्पष्ट रूप से दर्शाया गया है कि दलितों को हिंदू धर्म का हिस्सा नहीं माना जाता है। समाज में चाहे कितना भी परिवर्तन आ जाये, उच्च वर्ग के लोगों के मन में दलित सदैव अछूत ही रहेंगे।

दलितों के बीच 'धार्मिक अस्मिता' हमेशा से बड़ा सवाल रहा है, क्योंकि धर्म आधारित सामाजिक व्यवस्था में दलितों का निर्वासित जीवन अस्मिता की भावना के साथ-साथ व्यापक आक्रोश को भी जन्म देता है। भारतीय समाज महिलाओं को सांस्कृतिक और धार्मिक परंपराओं से बांधे रखना चाहता है। लेकिन ज्यादातर महिलाएं समाज में मौजूद झूठी रूढ़ियों का बोझ अपने ऊपर नहीं लेतीं। महिलाएं इससे निजात पाना चाहती हैं। आज के दौर में आम महिला और दलित महिला दोनों ही उच्च शिक्षित हैं। वह मानव जीवन का महत्व समझती है वास्तव में पुरुष वर्ग संस्कृति और धर्म का आधार लेकर ही स्त्री का शोषण करता है। धर्म और संस्कृति ये बड़े-बड़े शब्द वास्तव में स्त्री के खिलाफ प्रयुक्त होने वाले शोषण के हथियार है। इसलिए आधुनिक काल की लेखक एवं लेखिकाएँ संस्कृति-धर्म की गुलामी को नहीं मानती। धर्म के नाम पर किए जानेवाले भेद उसे मान्य नहीं है। जैसे प्रेमकपाडिया की कहानी 'हरिजन' में देवदासी का पुत्र अपनी माँ को देवदासी प्रथा से मुक्त करता है।

3.4.1 धर्म के शिकार दलित स्त्री

गरीब दलित महिलाओं की दर्दनाक और अपमानजनक जीवन स्थितियों का एक कारण धार्मिक प्रथाएँ भी हैं। 'धर्म' की व्याख्या करते हुए महान विचारक कार्ल मार्क्स ने लिखा है 'धर्म' अफीम है। अर्थात समाज में धर्म नशा का काम करता है। यह मानव कल्याण के लिए घातक है। हिंदू धार्मिक व्यवस्था में दलितों की स्थिति बहुत दयनीय है। मंदिरों में उनका प्रवेश वर्जित है, खान-पान और मिलने-जुलने में छुआछूत है, सांस्कृतिक कार्यक्रमों में भी भेदभाव होता है। दलितों को ब्राह्मण त्योहारों और अनुष्ठानों को मनाने से भी रोका जाता है। ऐसी पाबंदियों के कारण दलितों की स्थिति पशु से भी बदतर है। ऊंची जाति के पास 'धर्म' नाम की एक ऐसी चाबी थी जिसकी वजह से उनकी सभी समस्याओं का रास्ता अपने आप खुल गया। आज भी ऊंची जाति का समाज सत्ता हासिल करने के लिए धर्म नाम की इस व्यवस्था का फायदा उठाता है।

मोहनदास नैमिशराय की कहानी **'यात्रा'** में मुरिया धर्म परिवर्तन के बाद 'मारिया' बन जाता है। यहाँ चर्च का फादर उसका यौन शोषण करता है। महिला चाहे किसी भी जाति या धर्म की हो, वह सुरक्षित नहीं है। एक बेबस और कमजोर औरत को कोई भी तबाह कर सकता है।

सुशीला टाकभौरे की कहानी **'छौआ माँ'** में छोआ मां भी समाज में प्रचलित धार्मिकता से प्रभावित है। "माँ को घर लौटने में तीन बज गये। सुबह आठ-नौ बजे बकरियों को हरियाली की तरफ छोड़कर वह फिर से अपने काम में लग गयी थी। जचकी का काम, जच्चा के सौर घर की साफ-सफाई, झाड़ू-पौछा, लीपना-पोतना, वही करती है। जच्चा और बच्चा की तेल-मालिस करती है। उनके गन्दे कपड़े धोती है। वह गाँव की 'दाई माँ' है। पूरे गाँव की बहू-बेटियों के 'दाईपने' काम वही संभालती है। ऐसे समय में गांव के लोग उसके बड़े निहोरे करते हैं और मीठी-मीठी बातों में फुसलाकर बहुत से काम उससे करवा लेते हैं"।[34]

प्रस्तुत कहानी में दलितों के प्रति हिंदू धार्मिकता की झलक देखने को मिलती है। पूरे दिल से काम करने वाली छौआ मां को कहानी के अंत में धोखा मिलता है। वह नहीं चाहती कि उसकी बेटी उसका काम करे, लेकिन छोआ मां की अनुपस्थिति में गांव वाले उसकी बेटी से यह काम करवाते हैं। बाद में, गाँव वालों ने छोआ माँ को बताया कि- "तो का हो गओ? जचकी का काम बेटी से करा ही लियो तो का हो गओ? वा क्यों नहीं करेगी तेरो काम? जो तू करती आई है, वही तेरी मोड़ी करेगी। जो तुमरो कर्म है वही तुमरो धरम है। गन्दगी उठाने के काम तुमरी जात के लोग ही करे हैं"।[35]

दलित समाज सदियों से अपनी 'धार्मिक अस्मिता' के लिए तरस रहा है, लेकिन सवर्ण समाज ने उसे कभी अपने धर्म का हिस्सा नहीं बनने दिया। वह हिंदू धर्म की नकल करके अपने भगवान और आस्था की पूजा करता रहा। हिंदू धर्म की तरह दलित भी देवी-देवताओं

की पूजा करते रहे हैं, त्योहार और उत्सव मनाते रहे हैं, फिर भी वे कभी इसका हिस्सा नहीं बन पाए। धर्म के संबंध में उनकी 'अस्मिता' हिंदू धर्म से अलग रही है। आज दलित समाज अपनी अलग पहचान बनाने लगा है, वह बौद्ध धर्म और ईसाई धर्म के रूप में धर्मांतरण करके अपनी 'अस्मिता' बना रहे है।

3.4.2 अस्पृष्यता एवं धार्मिक आडंम्बर

हमारे भारतीय समाज में धार्मिक क्रियाकलापों के प्रति लोगों का झुकाव अधिक है। दलित समाज भी धार्मिक आडंबरों से भरा हुआ है। लोग पूजा-पाठ, यज्ञ, हवन, दान आदि धार्मिक क्रियाकलापों को न केवल अपना कर्तव्य मानते हैं, बल्कि अपने पूर्वजों के समय से चली आ रही परंपरा भी मानते हैं। ये लोग इन धर्मों के खिलाफ कुछ भी कहने वाले की बात सुनने से इनकार कर देते हैं। वे इन धार्मिक आडंबरों और उनकी शक्तियों पर आंख मूंदकर विश्वास करते हैं। उच्च वर्ग के लोग उन्हें अछूत मानते हैं और उन्हें अपने मंदिरों में प्रवेश करने से रोकते हैं, जबकि भगवान ने दोनों वर्गों को बनाया है, लेकिन दलितों को देवालय में जाने की इजाजत नहीं है।

ओमप्रकाश वाल्मिकी की कहानी **'ग्रहण'** में चौधरी की बहू माँ नहीं बन पाती थी और सब उसे बाँझ कहते थे। लेकिन दिक्कत बेटे में थी, इसीलिए बहू मां नहीं बन पाई लेकिन दोष बहू पर ही मढ़ा गया। चौधरी धार्मिक आचरण के अधीन थे। वह मरीजों का इलाज नहीं करती बल्कि पूजा करती हैं। इस दृश्य का एक अंश यहां प्रस्तुत है - "देवी-देवताओं की मन्नतें माँगी गई, पण्डे-पूजारियों को दान-दक्षिण दी गई, मुल्ला - मौलवियों के गण्डे-ताबीज बाँधे गये, फिर भी बिरम की बहूबंजर धरती की तरह ज्यों-की-त्यों सूनी ही बनी रही"।[36]

वाल्मिकी जी की कहानी **'बिरम की बहू'** में एक दृश्य है जिसमें दिखाया गया है कि पंडित लोग धार्मिक प्रवृत्तियों के माध्यम से लोगों को मूर्ख बनाकर उनसे धन उगाही करते रहते हैं। इस दृश्य की एक झलक प्रस्तुत है - "चौधरी ने पण्डित सियाराम को बुलाकर

दान-दक्षिणा दी थी। पण्डित ने मन्दिर में बड़ा-सा अनुष्ठान कराया था। हवेली से पण्डित सियाराम की आमदनी का रास्ता फिर खुल गया था"।[37] इस प्रकार हिंदी दलित कहानियों में धार्मिक आडंबर की झलक हमें न केवल धर्म के प्रति दलितों की सोच दिखा रहा है, बल्कि यह भी दिखाती है कि उच्च वर्ग के लोग भी जादू-टोना, कर्मकांड, दान-पुण्य आदि धार्मिक कार्यों में रुचि लेते हैं।

भगवान एक है और वह सभी की परवाह करता है, फिर ईश्वर जिस पशु को धरती पर भेजता है, उसकी बलि कैसे दे सकता है। ईश्वर ने सब कुछ दिया है, फिर हम उसे धूप-दीप, मिठाई, पकवान, सोने-चांदी के उपहार देकर क्यों पूजते हैं। पंडित भी हमारी तरह इंसान हैं। ईश्वर हमारी भी उतनी ही सुनेगा, जितनी उनकी सुनेगा। फिर भी हम पंडितों को ईश्वर मानकर उनके चंगुल में फंस जाते हैं। वे भी अपने ग्राहकों को फलों का लालच देकर उन्हें ठगते रहते हैं।

इस प्रकार उच्च वर्ग हो या निम्न वर्ग, उन्हें धार्मिक आडंबर से बाहर आकर अपनी सोच बदलनी होगी। ईश्वर सर्वत्र है। वह बिना कुछ लिए सबको सब कुछ देता है। यह संसार उसी का बनाया हुआ है। फिर हमारा कर्तव्य है कि हम इस संसार में छुआछूत और धार्मिक पाखंड जैसी बुराइयों को न फैलने दें, तभी ईश्वर हमसे प्रसन्न होंगे। हमें किसी भी निर्दोष पशु की बलि नहीं देनी चाहिए, भगवान ने उसे भी जीने का अधिकार दिया है। इसलिए हमें धर्म के नाम पर चल रहे पाखंड की बेड़ियों को तोड़ना होगा। भगवान एक हैं, उन्हें किसी आडंबर या दिखावे से नहीं पाया जा सकता, बल्कि वे सच्चे दिल की पुकार सुनते हैं और ऐसे सच्चे लोगों पर हमेशा अपनी कृपा बनाए रखते हैं।

3.4.3 पुर्नजन्म पर आधारित कहानियाँ

हिंदी दलित कहानियों में दलित वर्ग या उच्च वर्ग के लोग अक्सर 'पुनर्जन्म' में विश्वास करते हैं। यदि उनके जीवन में कुछ भी घटित होता है तो वे उसे पुनर्जन्म का

पुण्य या पाप मानकर स्वीकार कर लेते हैं। दलित पुनर्जन्म की भावना से ओत-प्रोत हैं। वे अपने दलित जीवन के नरक को अपने पिछले जीवन का कष्ट मानते हैं और भगवान से प्रार्थना करते हैं कि अगले जीवन में उन्हें दलित जीवन से मुक्ति मिले। पुनर्जन्म का उल्लेख हमारे वेदों और पुराणों में भी दिया है। इस सत्य को आज तक कोई नहीं जान पाया है कि पिछला या अगला जन्म होता है या नहीं।

सुशीला टाकभौरे की कहानी **'सम्भव - असम्भव'** में मातंग जाति की स्त्री मनाली अगले जन्म की बात को नहीं मानती है। वह इस पुनर्जन्म की भावना को इंसान के दिमाग का वहम ही मानती है। दिल को तसल्ली देने के लिए यह ख्याल अच्छा है। इसी दृश्य की झलक है। मनाली ने सोचा- "उसे संकीर्ण भावनाएँ नहीं, जीवन का उत्कर्ष चाहिए। मरने के बाद अगले जन्म की बातें बिल्कुल बकवास हैं। जो करना है, जो पाना है, वह इसी जन्म में सम्भव है" ।[38]

इस तरह दलित या उच्च वर्ग पुनर्जन्म की कहानियों या अफवाहों पर विश्वास करता आ रहा है। हर वर्ग को पुनर्जन्म के अंधविश्वास से बाहर निकलना होगा क्योंकि यह सिर्फ एक कल्पना है और इसकी सच्चाई का कोई आधार नहीं है। हमें आज मिले अवसर और जन्म पर भरोसा करके इस जन्म में ही जो करना है, उसे करने का दृढ़ संकल्प लेना चाहिए। पिछला या अगला जन्म व्यक्ति की कल्पना मात्र है, इसे किसी ने नहीं देखा, फिर भी हम इसमें फंसे हुए हैं। अतः हर वर्ग के लोगों को पुनर्जन्म की कल्पना से बाहर आकर वास्तविकता को स्वीकार करना होगा।

3.4.4 अंधविश्वास पर आधारित कहानियाँ

अंधविश्वास का मतलब है, बिना सोचे समझे किसी बात पर यकीन करना या किसी चीज़ का अंधाधुंध समर्थन करना. अंधविश्वास, अज्ञानता और झूठ-धोखाधड़ी का प्रतीक है। हिंदी दलित कहानियाँ अंधविश्वास से भरी हैं। अशिक्षित दलित समुदाय जादू-टोना, तंत्र-मंत्र,

भूत-प्रेत, बलि आदि में पूर्ण विश्वास रखता है। मैंने कुछ कहानियों के माध्यम से इन तथ्यों पर चर्चा की है।

ओमप्रकाश वाल्मिकी की कहानी 'ग्रहण' में चौधरी की बहू संतान प्राप्ति के लिए तमाम हथकंडे अपनाती है, लेकिन वह बांझ ही रहती है। यह अंधविश्वास है कि पूजा-पाठ से बांझपन दूर हो जाएगा, जबकि बहू-बेटे का इलाज कराने की जरूरत है। इसी अन्धविश्वास का एक द्रश्य प्रस्तुत है - "देवी-देवताओं की मन्नतें माँगी गई। पण्डे-पूजारियों को दान-दक्षिणा दी गई। मुल्ला मौलबियों के गण्डे-ताबीज बाँधे गये। टोने-टोटके, उपवास, नेम-व्रत जो भी किसी ने बताया, सब कुछ किया"।[39]

श्योराज सिंह बेचैन जी की कहानी **'हाथ तो रेग ही आते हैं'** में एक दृश्य में अंधविशावास की एक दृश्य दिखते है। जैसे -"हमारे हस्पताल में कटने वाले हाथ फिर से नये उग आते हैं। जैसे गणेश जी के सिर पर हथिनी के बच्चे का सिर जुड़ा था, युद्ध या दंगे में कटे किसी के हाथ की जगह दूसरे के जोड़ दिये जाते हैं। नहीं तो थोड़े ही दिनों में हाथ खुद-ब-खुद उग आते हैं"।[40]

नर्स की यह बात सुनकर रुक्खो ने अपने आंसू रोके और विश्वास के साथ अपने बेटे से कहा -"बेटा सुना, हाथ तो उग आते हैं! सुना बेटा, हाथ तो उग ही आते हैं"।[41]

इस प्रकार दलित समाज अंधविश्वास की भावना के प्रति पूरी श्रद्धा रखते है। यह भावना उच्च वर्ग में भी व्याप्त है, लेकिन दलित वर्ग में यह अधिक प्रचलित है। इन अंधविश्वासों का मुख्य कारण अशिक्षा है। यदि कोई दलित बच्चा बीमार पड़ जाता है तो उसे डॉक्टर के पास ले जाने के बजाय झाड़-फूंक के लिए ओझा के पास ले जाया जाता है। इस अंधविश्वास के कारण अधिकांश लोगों की मृत्यु भी हो जाती है। इसलिए दलितों का शिक्षित होना बहुत जरूरी है, तभी वे इन अंधविश्वासों के भंवर से बाहर निकल पाएंगे। पूरे समाज को इन अंधविश्वासों की बेड़ियाँ तोड़ने का साहस जुटाना होगा। हमें सिर्फ अपनी

शिक्षा और कर्म पर विश्वास करना होगा, इन झांसों पर नहीं। ओझा और पंडित किसी भी जाति के लोगों का शोषण करने से नहीं चूकते। चाहे वे खुद कितने भी बुरे या भ्रष्ट क्यों न हों, वे लोगों को सच्चाई का रास्ता दिखाने का दिखावा करते हैं। चाहे किसी व्यक्ति का जन्म हो या उसकी मृत्यु, पंडित दोनों ही स्थितियों में लोगों का शोषण करते हैं।

अतः अंधविश्वास की इस मजबूत दीवार को तोड़कर दलितों को अज्ञानता के अंधकार से निकालकर ज्ञान के प्रकाश में लाना होगा, तभी वे सफल जीवन जी सकेंगे। अंत में निष्कर्ष यही निकलता है कि दलित कहानियों में यथार्थ के भावनात्मक धरातल पर अंधविश्वास को बहुत ही पैनी नजर से उजागर किया गया है।

अशिक्षा के कारण उनमें वैज्ञानिक दृष्टिकोण का सर्वथा अभाव है, जिसके फलस्वरूप वे भूत-प्रेत, जादू-टोना जैसे अंधविश्वासों पर शीघ्र विश्वास कर लेते हैं। इससे वे प्रगति के पथ पर आगे नहीं बढ़ पाते हैं। दरअसल, इन अंधविश्वासों और प्रथाओं का प्रचार-प्रसार ऊंची जातियों द्वारा किया जाता है, जिसमें दलित महिलाएं फंस जाती हैं और अपनी आय का एक बड़ा हिस्सा इन अंधविश्वासों के कारण खो देती हैं।

निष्कर्ष

भारत में महिलाएँ एक लम्बी ऐतिहासिक यातना से गुज़रने के बाद उस मुकाम पर पहुँच रही हैं जहाँ से उनका लक्ष्य नज़र आता है। दरअसल, महिलाओं का संघर्ष सिर्फ अस्तित्व के लिए नहीं, बल्कि 'आज़ादी' और 'अधिकारों' के लिए भी है। आधुनिक स्त्री पढ़ी-लिखी है, कामकाजी स्त्री है। कामकाजी न हो तो भी वह घर की आर्थिक परिस्थितियों से संघर्ष करती है। स्त्री शोषण खत्म करने के लिए देश के बहुमत औरतों की समस्याओं को सुलझाने की ज़रूरत है। उनकी सुरक्षा से भी देश का विकास झलक रहेगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. डॉ. गणेशदास, स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी में नारी के विविध रूप, पृष्ट. 101
2. राजेन्द्र यादव, हंस, जून-2003, पृष्ट.32
3. डेविड एल सिल्स (एड), 'इंटरनेशनल इनसाइक्लोपीडिया ओफ सोषल साइंस, (वॉल्यूम-7), पृ.61
4. गुप्त, सुरेन्द्रचंन्द्र, 'प्रसाद के नाटक और भारतीय अस्मिता', प्रयाग प्रकाशन नई दिल्ली, 1990, पृ. 9
5. वर्मा, अर्चना, 'अस्मिता विमर्श का स्त्री स्वर', पृ.32
6. हिंदी साहित्य में दलित चेतना-डॉ. वास्कर आनंद पृ.सं.18
7. कुसुम वियोगी, अंतिम बयान, पृष्ट. 136, रमणिका गुप्ता, दलित कहानी संचयन, प्रथम संस्करण, 2003, साहित्य अकादमी
8. कावेरी, सुमंगली, पृ.117, रमणिका गुप्ता, दलित कहानी संचयन, साहित्य अकादमी प्रकाशन
9. कुसुम मेधवाल, अंगारा, पृष्ट. 143, रमणिका गुप्ता, दलित कहानी संचयन, प्रथम संस्करण, 2003, साहित्य अकादमी
10. सूरजपाल चौहान, बदबू, पृ.15, नया बाराहमण, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
11. सूरजपाल चौहान, बदबू, पृ.15-16, नया बाराहमण, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
12. सूरजपाल चौहान, बदबू, पृष्ट.16, नया ब्राहमण, वाणी प्रकाशन
13. नामदेव, चरिता, पृष्ठ.249, रजत रानी मीनू, दलित स्त्री केंन्द्रित कहानियाँ, प्रथम संस्करण-2023, वाणी प्रकाशन
14. मोहनदास नैमिशराय, यात्रा, पृ.50, रजत रानी मीनू, दलित स्त्री केंन्द्रित कहानियाँ, वाणी प्रकाशन

15. टेकचंद, ए.टी.एम, पृष्ट.231, रजत रानी मीनू, दलित स्त्री केंन्द्रित कहानियाँ, प्रथम संस्करण-2023, वाणी प्रकाशन
16. टेकचंद, ए.टी.एम, पृष्ट.232, रजत रानी मीनू, दलित स्त्री केंन्द्रित कहानियाँ, प्रथम संस्करण-2023, वाणी प्रकाशन
17. टेकचंद, ए.टी.एम, पृष्ट.232, रजत रानी मीनू, दलित स्त्री केंन्द्रित कहानियाँ, प्रथम संस्करण-2023, वाणी प्रकाशन
18. सूरजपाल चौहान, चोट, पृष्ट.37, रजत रानी मीनू, दलित स्त्री केंन्द्रित कहानियाँ, प्रथम संस्करण-2023, वाणी प्रकाशन
19. दीपा, जीत, पृष्ट.290, रजत रानी मीनू, दलित स्त्री केंन्द्रित कहानियाँ, प्रथम संस्करण-2023, वाणी प्रकाशन
20. डॉ.कुसुम वियोगी, सुमंगली, पृ.117, रमणिका गुप्ता, दलित कहानी संचयन, प्रथम संस्करण-2003, साहित्य अकादेमी
21. नामदेव, चरिता, पृ. 248, रजत रानी मीनू, दलित स्त्री केंन्द्रित कहानियाँ, वाणी प्रकाशन
22. नामदेव, चरिता, पृ. 248, रजत रानी मीनू, दलित स्त्री केंन्द्रित कहानियाँ, वाणी प्रकाशन
23. नामदेव, चरिता, पृ. 248, रजत रानी मीनू, दलित स्त्री केंन्द्रित कहानियाँ, वाणी प्रकाशन
24. डॉ.कुसुम वियोगी, सुमंगली, पृ.117, रमणिका गुप्ता, दलित कहानी संचयन, प्रथम संस्करण-2003, साहित्य अकादेमी
25. डॉ.कुसुम वियोगी, सुमंगली, पृ.117, रमणिका गुप्ता, दलित कहानी संचयन, प्रथम संस्करण-2003, साहित्य अकादेमी
26. अन्धड़, सलाम(कहानी संग्रह), ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ.901

27. खानाबदोश, सलाम(कहानी संग्रह), ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ.1241

28. नयी सदी की पहचान श्रेष्ठ दलित कहानियों में सूरजपाल चोहान की कथा, बदबू, मुद्राराक्षस, पृ.1281

29. मोहनदास नैमिशराय, यात्रा, पृ. 49, रजत रानी मीनू, दलित स्त्री केन्द्रित कहानियाँ, वाणी प्रकाशन

30. श्योराज सिंह बेचैन, हाथ तो उग ही आते हैं, पृ.84, रजत रानी मीनू, दलित स्त्री केन्द्रित कहानियाँ, वाणी प्रकाशन

31. डॉ. श्यामाचरण दुबे, मानव और संस्कृति, पृष्ठ.7

32. सुमित्रा महरोल, प्रतिकार, पृ. 88, रजत रानी मीनू, दलित स्त्री केंन्द्रित कहानियाँ, वाणी प्रकाशन

33. सुमित्रा महरोल, प्रतिकार, पृ. 88, रजत रानी मीनू, दलित स्त्री केंन्द्रित कहानियाँ, वाणी प्रकाशन

34. छौआ माँ, सुशीला टाकभौरे, पृ.65, कथारंग सुशीला टाकभौरे की संपूर्ण कहानियाँ, प्रलेक प्रकाशन

35. छौआ माँ, सुशीला टाकभौरे, पृ.72, कथारंग सुशीला टाकभौरे की संपूर्ण कहानियाँ, प्रलेक प्रकाशन

36. ग्रहण, सलाम(कहनी संग्रह), ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. 64

37. बिरम की बहू, सलाम(कहनी संग्रह), ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ.74

38. सम्भव-असम्भव, संघर्ष(कहनी संग्रह), सुशीला टाकभौरे, पृ.128

39. ग्रहण, सलाम(कहानी संग्रह), ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ.64

40. श्योराज सिंह बेचैन, हाथ तो रेग ही आते हैं, पृ. 85, रजत रानी मीनू, दलित स्त्री केन्द्रित कहानियाँ, वाणी प्रकाशन

41. श्योराज सिंह बेचैन, हाथ तो रेग ही आते हैं, पृ. 85, रजत रानी मीनू, दलित स्त्री केन्द्रित कहानियाँ, वाणी प्रकाशन